Shodh Drishti (An International Peer Reviewed Multidisciplinary Refereed Research Journal) Impact Factor : 9.0 (IIFS)
Vol. 17, No. 8, August 2026 ISSN : 0976-6650

कजरी : लोक से शास्त्र तक–सांगीतिक संरचना एवं प्रमुख कलाकारों के योगदान का अध्ययन

डॉ. अर्चना तिवारी
सहायक प्राध्यापक, प्रदर्शन कला विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय हरिद्वार, उत्तराखंड

सारांश

भारतीय लोकसंगीत की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध रही है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में विकसित लोकगायन की अनेक विधाओं में कजरी का विशिष्ट स्थान है। कजरी केवल एक लोकगीत नहीं, बल्कि भारतीय जनजीवन, ऋतुचक्र, सामाजिक संवेदनाओं तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का जीवंत दर्पण है। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश के वाराणसी, मिर्जापुर, जौनपुर तथा आसपास के क्षेत्रों में इसका व्यापक विकास हुआ। सावन-भादों के वर्षाकाल में गायी जाने वाली कजरी में प्रकृति, प्रेम, विरह, भक्ति तथा पारिवारिक संबंधों की मधुर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। समय के साथ यह लोकगायन शैली उपशास्त्रीय संगीत के मंच तक पहुँची और अनेक विद्वान संगीतज्ञों एवं कलाकारों ने इसे नई पहचान प्रदान की।

प्रस्तुत शोध-पत्र में कजरी के उद्भव, विकास, सांगीतिक स्वरूप, प्रमुख विशेषताओं, विविध रूपों तथा शास्त्रीय संगीत में इसके स्थान का अध्ययन किया गया है। साथ ही कजरी के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में योगदान देने वाले प्रमुख कलाकारों के कार्यों का भी विवेचन किया गया है। यह अध्ययन कजरी की सांगीतिक परम्परा, उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति तथा वर्तमान संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।[1-5]

बीज शब्द *: कजरी, लोकसंगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सावन गीत, बनारस अंग, मिर्जापुर, लोक परम्परा।*

प्रस्तावना

भारतीय संगीत का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, जिसमें शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोकसंगीत की भी समृद्ध परम्परा रही है। लोकसंगीत का आधार जनजीवन है। यह किसी विशेष वर्ग का संगीत न होकर सामान्य जनमानस की भावनाओं, संस्कारों, सामाजिक परिस्थितियों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का सहज एवं स्वाभाविक संगीत है। भारतीय लोकगीतों की प्रत्येक विधा किसी न किसी सामाजिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक अवसर से जुड़ी हुई है। इन्हीं लोकविधाओं में कजरी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।[6-8]

कजरी का सम्बन्ध मुख्यतः वर्षा ऋतु से है। जब आकाश में घने बादल उमड़ते हैं, धरती हरियाली से आच्छादित हो जाती है तथा प्रकृति नवजीवन का अनुभव करती है, उसी समय जनमानस में उमड़ने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति कजरी के रूप में होती है। सावन और भादों के महीनों में महिलाओं द्वारा समूह में तथा पुरुषों द्वारा अखाड़ों में कजरी गाने की परम्परा आज भी अनेक स्थानों पर जीवित है। इस दृष्टि से कजरी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि लोकजीवन की सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग है।[9-13]

समय के साथ कजरी का स्वरूप केवल ग्रामीण अंचलों तक सीमित नहीं रहा। अनेक महान कलाकारों ने इसे मंचीय प्रस्तुति प्रदान की तथा उपशास्त्रीय संगीत की प्रतिष्ठित विधा के रूप में स्थापित किया। बनारस घराने की गायकी में कजरी को विशेष स्थान प्राप्त हुआ, जहाँ इसकी प्रस्तुति में राग, ताल, लय तथा भाव की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस प्रकार कजरी लोक से शास्त्र तक की यात्रा का उत्कृष्ट उदाहरण बन गई।[14-16]

कजरी का उद्भव एवं विकास

भारतीय लोकसंगीत की विविध विधाओं में कजरी का विकास उत्तर भारत के पूर्वांचल क्षेत्र में हुआ। विशेष रूप से वाराणसी, मिर्जापुर, जौनपुर, भदोही तथा इनके आसपास के क्षेत्रों में कजरी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इन क्षेत्रों की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने कजरी के स्वरूप को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[17-19]

कजरी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, किन्तु सामान्यतः इसका सम्बन्ध 'काजल' अथवा वर्षा ऋतु में छाए काले मेघों से माना जाता है। वर्षा ऋतु की श्यामलता, प्रकृति की हरियाली तथा मानवीय भावनाओं का जो समन्वय इन गीतों में मिलता है, वही इसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है।[20-22]

प्रारम्भिक अवस्था में कजरी पूर्णतः लोकगायन की विधा थी। इसे ग्रामीण महिलाएँ अपने दैनिक जीवन, त्योहारों, झूला उत्सव तथा सावन के अवसर पर समूह में गाती थीं। बाद में पुरुषों द्वारा भी कजरी गायन की परम्परा विकसित हुई, जिसमें अखाड़ों का विशेष योगदान रहा। इन अखाड़ों में प्रश्नोत्तर शैली, काव्यात्मक प्रतिस्पर्धा तथा सांगीतिक प्रस्तुति के माध्यम से कजरी को नई ऊँचाइयाँ प्राप्त हुईं।[23-26]

वाराणसी एवं मिर्जापुर की कजरी परम्परा विशेष रूप से प्रसिद्ध रही है। इन क्षेत्रों में कजरी केवल लोकगीत न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई। सावन के आगमन के साथ ही ग्रामों एवं नगरों में कजरी गायन का वातावरण निर्मित होता था। महिलाएँ झूला झूलते समय कजरी गाती थीं, वहीं पुरुष रात्रिकालीन अखाड़ों में सामूहिक गायन करते थे। इस प्रकार कजरी ने लोकजीवन के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित किया।[27-29]

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते कजरी का स्वरूप और अधिक विकसित हुआ। अनेक विद्वान संगीतज्ञों तथा मंचीय कलाकारों ने इसे शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत की परम्परा से जोड़ा। परिणामस्वरूप कजरी में रागों का प्रयोग, तालों का व्यवस्थित स्वरूप तथा मंचीय प्रस्तुति की कलात्मकता विकसित हुई। इसके साथ ही ठुमरी, दादरा, चैती तथा होरी जैसी उपशास्त्रीय विधाओं के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ।[30-32]

यद्यपि मंचीय प्रस्तुति के कारण कजरी के स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए, तथापि इसकी मूल लोकभावना, सहजता तथा भावप्रधानता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। यही कारण है कि कजरी भारतीय लोकसंगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत के मध्य एक सशक्त सेतु के रूप में स्थापित हुई है।

कजरी का सांगीतिक स्वरूप

कजरी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका भावप्रधान स्वरूप है। इसमें शब्द और संगीत का ऐसा समन्वय मिलता है जिसमें लोकजीवन की अनुभूतियाँ अत्यन्त सहज रूप में व्यक्त होती हैं। कजरी की धुनें सरल, मधुर एवं गेय होती हैं, जिसके कारण यह सामान्य जनमानस द्वारा आसानी से ग्रहण की जाती है।

कजरी के सांगीतिक पक्ष में राग, ताल, लय तथा भाव का संतुलित समन्वय देखने को मिलता है। उपशास्त्रीय प्रस्तुति में कलाकार अपनी गायकी के अनुरूप रागात्मक विस्तार, बोल-बनाव तथा भावाभिव्यक्ति का प्रयोग करते हैं, जबकि लोक शैली में इसकी सहजता और स्वाभाविकता प्रमुख रहती है। इसी विशेषता ने कजरी को लोक एवं शास्त्रीय—दोनों परम्पराओं में समान रूप से प्रतिष्ठित किया है।

कजरी की विविध विधाएँ एवं उनका सांगीतिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण

कजरी भारतीय लोकसंगीत की अत्यन्त समृद्ध एवं बहुआयामी विधा है। समय, क्षेत्र, प्रस्तुति शैली तथा विषय-वस्तु के आधार पर इसके अनेक रूप विकसित हुए हैं। लोकजीवन के परिवर्तित सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक आवश्यकताओं तथा मंचीय विकास के साथ कजरी ने अनेक स्वरूप ग्रहण किए। यही कारण है कि कजरी केवल एक लोकगीत न होकर लोकसंस्कृति का व्यापक दस्तावेज प्रतीत होती है। विभिन्न अवसरों, ऋतुओं तथा भावनात्मक अवस्थाओं के अनुसार इसकी अनेक विधाएँ प्रचलित हुईं; जिनमें लोक कजरी, उपशास्त्रीय कजरी, शायरी कजरी, सावन गीत, बारहमासा, झूला अथवा हिंडोला गीत, आल्हा तथा बिरना गीत विशेष उल्लेखनीय हैं।[29-32]

लोक कजरी

लोक कजरी कजरी की सर्वाधिक प्राचीन एवं मौलिक शैली मानी जाती है। इसका जन्म सीधे लोकजीवन से हुआ तथा इसकी प्रस्तुति में किसी प्रकार की औपचारिक संगीत शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण परिवेश की महिलाएँ सावन एवं भाद्रपद के महीनों में समूह बनाकर इन गीतों का गायन करती हैं। इन गीतों में जीवन की सहज अनुभूतियाँ, पारिवारिक सम्बन्ध, प्रकृति का सौन्दर्य तथा सामाजिक परम्पराएँ अत्यन्त स्वाभाविक रूप में व्यक्त होती हैं। लोक कजरी की भाषा भी पूर्णतः लोकभाषा पर आधारित होती है, जिससे श्रोता उसके भावों से सहज ही जुड़ जाता है।

लोक कजरी का सबसे बड़ा गुण इसकी स्वाभाविकता है। इसमें कृत्रिम अलंकरण या जटिल सांगीतिक संरचना की अपेक्षा भावों की सरल अभिव्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि आज भी पूर्वांचल के ग्रामीण क्षेत्रों में यह शैली अपने मूल स्वरूप में जीवित है तथा लोकजीवन का अभिन्न अंग बनी हुई है।

उपशास्त्रीय कजरी

समय के साथ जब कजरी का प्रवेश मंचीय संगीत में हुआ, तब इसके प्रस्तुतीकरण में शास्त्रीय संगीत के अनेक तत्वों का समावेश हुआ। परिणामस्वरूप उपशास्त्रीय कजरी का विकास हुआ। इस शैली में राग, स्वर-विन्यास, लय, ताल तथा भावाभिव्यक्ति

का संतुलित प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इसकी मूल लोकभावना सुरक्षित रहती है, तथापि प्रस्तुति अधिक परिष्कृत एवं कलात्मक हो जाती है।

उपशास्त्रीय कजरी का विशेष विकास बनारस घराने के संगीतज्ञों द्वारा किया गया। ठुमरी, दादरा, चैती तथा होरी की भाँति कजरी को भी मंचीय प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इस शैली में कलाकार आलाप, बोल-बनाव तथा सूक्ष्म स्वर-सज्जा के माध्यम से गीत की भावात्मकता को और अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। इस प्रकार कजरी लोक एवं शास्त्रीय संगीत के मध्य एक सशक्त सेतु के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

शायरी कजरी

कजरी की एक अत्यन्त रोचक शैली 'शायरी कजरी' है। यह सामान्य लोक कजरी से भिन्न होती है क्योंकि इसमें प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से गायन किया जाता है। कलाकार एक-दूसरे के समक्ष प्रश्न प्रस्तुत करते हैं तथा तत्पश्चात उसका सांगीतिक एवं काव्यात्मक उत्तर देते हैं। इस शैली में तत्काल रचना करने की क्षमता, काव्यबोध, वाक्पटुता तथा संगीत-कौशल का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।[33]

शायरी कजरी की प्रस्तुति सामान्यतः मेलों, उत्सवों तथा कजरी अखाड़ों में होती थी। इसमें कलाकार श्रोताओं के समक्ष अपनी बुद्धिमत्ता तथा काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन भी करते थे। आपके द्वारा उद्धृत उदाहरण—

"चाट रही चक्कू से चकोरी कोरा कटोरा चाँदी का…"[34]

प्रश्नोत्तर शैली की इसी परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार के गायन में केवल संगीत ही नहीं, बल्कि काव्य, तर्क, कल्पना तथा प्रस्तुति-कौशल का भी विशेष महत्व होता है। इसी कारण यह शैली लोक मनोरंजन का अत्यन्त लोकप्रिय माध्यम रही।

सावन गीत

कजरी का सर्वाधिक लोकप्रिय स्वरूप सावन गीतों में दिखाई देता है। सावन भारतीय संस्कृति में प्रेम, उल्लास, हरियाली तथा नवजीवन का प्रतीक माना जाता है। वर्षा ऋतु के आगमन के साथ ही प्रकृति का सम्पूर्ण वातावरण परिवर्तित हो जाता है और यही परिवर्तन लोकगीतों में भी प्रतिबिम्बित होता है। सावन गीतों में जहाँ एक ओर वर्षा का उल्लास दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर विरहिणी नायिका की पीड़ा भी अत्यन्त मार्मिक रूप में व्यक्त होती है।[35]

भारतीय पारिवारिक परम्परा में सावन का महीना विवाहित स्त्रियों के लिए विशेष महत्व रखता है। इस समय प्रत्येक स्त्री अपने मायके जाने की आकांक्षा रखती है। इसलिए सावन गीतों में मायके का स्नेह, भाई का प्रेम, माता-पिता का वात्सल्य तथा सखी-सहेलियों का आत्मीय सम्बन्ध अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है।

आपके द्वारा उद्धृत सावन गीत—

"सावन महीनवा में पड़ेला फुहरवा की सब सखी ना, चली अपने नइहरवा की सब सखी ना..."

इस भावभूमि का अत्यन्त सजीव उदाहरण है। इसमें वर्षा का प्राकृतिक वातावरण, मायके जाने की आकांक्षा तथा स्त्री मन की कोमल भावनाओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण मिलता है। यही कारण है कि सावन गीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि लोकजीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन जाते हैं।

बारहमासा, झूला (हिंडोला), आल्हा, बिरना एवं कजरी की सांस्कृतिक विशेषताओं का विश्लेषण

बारहमासा गीत

कजरी की विभिन्न विधाओं में **बारहमासा** का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय लोकसाहित्य में बारहमासा ऐसी काव्य एवं गायन परम्परा है जिसमें वर्ष के बारह महीनों के माध्यम से किसी विरहिणी नायिका की मनःस्थिति का चित्रण किया जाता है। कजरी परम्परा में बारहमासा केवल ऋतु-वर्णन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि प्रत्येक माह के साथ नायिका की मानसिक स्थिति, प्रतीक्षा, आशा, निराशा तथा विरह की तीव्रता का भी अत्यन्त मार्मिक चित्रण करता है।

बारहमासा गीतों का मूल आधार **वियोग** है। इनमें प्रकृति का वर्णन स्वयं में उद्देश्य नहीं होता, बल्कि वह नायिका के विरह को और अधिक तीव्र बनाने वाले **उद्दीपन विभाव** के रूप में उपस्थित होता है। आषाढ़ के मेघ, सावन की वर्षा, भाद्रपद की बिजली, कार्तिक का दीपोत्सव, पौष की शीत तथा फाल्गुन का रंगोत्सव—इन सभी प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव विरहिणी के अन्तर्मन पर पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक महीना उसकी भावनाओं को नया स्वर प्रदान करता है।[36]

आपके द्वारा उद्धृत बारहमासा गीत—

"सजनी श्याम गये मधुबनवा, कबके लिखे अवनवा ना..."

में वर्ष के प्रत्येक मास का उल्लेख करते हुए नायिका अपने प्रिय के वियोग की वेदना व्यक्त करती है। आषाढ़ में घनघोर वर्षा, सावन की फुहार, भादों की बिजली, कार्तिक के दीप, माघ का स्नान तथा फाल्गुन के रंग—ये सभी अवसर उसके लिए आनंद

के नहीं, बल्कि विरह की स्मृति के प्रतीक बन जाते हैं। यही भावात्मक गहराई बारहमासा को कजरी की अत्यन्त प्रभावशाली विधा बनाती है।

बारहमासा गीतों का गायन किसी एक निश्चित समय तक सीमित नहीं है, यद्यपि इनका अधिक प्रचलन वर्षा ऋतु में देखने को मिलता है। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही इनका सामूहिक गायन करते हैं। इनके माध्यम से भारतीय लोकजीवन की संवेदनशीलता, प्रकृति के साथ भावात्मक सम्बन्ध तथा पारिवारिक जीवन की गहन अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं।

झूला अथवा हिंडोला गीत

वर्षा ऋतु के आगमन के साथ भारतीय लोकजीवन में झूला उत्सव का विशेष महत्व रहा है। इसी परम्परा से जुड़ी कजरी की एक अत्यन्त लोकप्रिय शैली **झूला अथवा हिंडोला गीत** कहलाती है। सावन एवं भाद्रपद के महीनों में वृक्षों पर झूले डाले जाते हैं तथा महिलाएँ सामूहिक रूप से झूला झूलते हुए कजरी का गायन करती हैं। लोकजीवन में यह परम्परा केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता का प्रतीक भी रही है।[37]

झूला गीतों में प्रकृति, परिवार तथा सामाजिक सम्बन्धों का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण मिलता है। आपके द्वारा उद्धृत उदाहरण—

"बाबा निमिया के पेड़ जिनि काटेउ, निमिया चिरइया बसेर..."[38]

लोकजीवन की संवेदनशीलता का अत्यन्त मार्मिक उदाहरण है। इस गीत में कन्या अपने पिता से नीम का वृक्ष न काटने का अनुरोध करती है, क्योंकि वह पक्षियों का आश्रय है। साथ ही वह स्वयं को भी पक्षियों के समान मानते हुए संकेत करती है कि जैसे चिड़ियाँ एक दिन उड़ जाती हैं, उसी प्रकार विवाह के पश्चात पुत्री भी अपने मायके से विदा हो जाती है। इस प्रकार झूला गीतों में प्रकृति और पारिवारिक जीवन का अत्यन्त भावात्मक समन्वय दिखाई देता है।

इन गीतों में केवल झूले का वर्णन ही नहीं होता, बल्कि बेटी के प्रति माता-पिता का स्नेह, विदाई की पीड़ा तथा पारिवारिक संबंधों की आत्मीयता भी अत्यन्त सहज रूप में व्यक्त होती है। यही कारण है कि झूला गीत भारतीय लोकसंस्कृति की अमूल्य धरोहर माने जाते हैं।

आल्हा गीत

कजरी परम्परा में **आल्हा गीत** का स्वरूप अन्य विधाओं से कुछ भिन्न दिखाई देता है। सामान्यतः सावन के समय जब कृषि कार्य का प्रारम्भिक चरण पूर्ण हो जाता है और किसानों को कुछ अवकाश प्राप्त होता है, तब ग्रामीण क्षेत्रों में सामूहिक गायन की परम्परा विकसित होती है। इसी अवसर पर पुरुष वर्ग समूह बनाकर आल्हा एवं कजरी का गायन करता है।[39]

आल्हा शैली में उत्साह, वीरता, सामूहिकता तथा लोकजीवन की ऊर्जा का विशेष समावेश होता है। आपके द्वारा उद्धृत पंक्तियाँ—

"कजरी वन के हाथी सजिगे, सजिगे राजस्थानी ऊँट सजिगे..."

ग्रामीण परिवेश के सामूहिक उल्लास तथा लोकभाषा की सहज अभिव्यक्ति का परिचायक हैं। यद्यपि इस शैली में वीर रस का प्रभाव दिखाई देता है, तथापि वर्षा ऋतु के उत्सव एवं सामाजिक सहभागिता का स्वर भी समान रूप से विद्यमान रहता है।

बिरना गीत

कजरी की भावप्रधान विधाओं में **बिरना गीत** का विशेष स्थान है। 'बिरना' शब्द का प्रयोग लोकभाषा में **भाई** के लिए किया जाता है। सावन के अवसर पर जब बहनें अपने मायके आने की इच्छा व्यक्त करती हैं, तब वे अपने भाई को सम्बोधित करके जो गीत गाती हैं, उन्हें बिरना गीत कहा जाता है।[40]

इन गीतों में भाई-बहन के स्नेह, आत्मीयता तथा पारिवारिक सम्बन्धों की मधुर अभिव्यक्ति होती है। आपके द्वारा उद्धृत गीत—

"बहिनी बिरन भइया मोहि लै जाउ..."

में बहन अपने भाई से उसे ससुराल से मायके ले जाने का अनुरोध करती है। इस प्रकार के गीतों में भारतीय परिवार व्यवस्था, भाई-बहन के पवित्र सम्बन्ध तथा स्त्री की भावनात्मक स्थिति का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण मिलता है। यही कारण है कि बिरना गीत लोकजीवन में अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं।

कजरी की सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशेषताएँ

उपरोक्त सभी विधाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कजरी केवल एक संगीत शैली नहीं है, बल्कि भारतीय लोकसंस्कृति की जीवंत अभिव्यक्ति है। इसमें ऋतु परिवर्तन, प्रकृति, प्रेम, विरह, भक्ति, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक परम्पराएँ तथा लोकजीवन की सहज संवेदनाएँ एक साथ अभिव्यक्त होती हैं।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक कजरी गायन अपने विकास के स्वर्णकाल में पहुँचा। इस समय इसकी लोकप्रियता केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि मंचीय प्रस्तुतियों तथा आकाशवाणी जैसे माध्यमों के द्वारा यह व्यापक स्तर पर प्रतिष्ठित हुई। इसी काल में अनेक विद्वान कलाकारों ने इसे उपशास्त्रीय संगीत के रूप में नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।

इसी कारण आज कजरी भारतीय लोकसंगीत एवं उपशास्त्रीय संगीत के मध्य एक ऐसी महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार की जाती है, जिसने अपनी मूल लोकभावना को सुरक्षित रखते हुए समयानुकूल विकास भी किया है।

कजरी में प्रयुक्त ताल, वाद्य एवं प्रमुख कलाकारों का योगदान

कजरी में प्रयुक्त ताल एवं वाद्य

किसी भी लोकसंगीत की आत्मा उसकी लयात्मकता होती है। कजरी भी इसका अपवाद नहीं है। कजरी का मूल स्वरूप उल्लास, चंचलता, कोमल भावों तथा सहज अभिव्यक्ति पर आधारित है। यही कारण है कि इसकी प्रस्तुति में ऐसे तालों का प्रयोग किया जाता है जो भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति को सहज रूप से व्यक्त कर सकें। कजरी में प्रयुक्त तालों का चयन गीत की प्रकृति, विषयवस्तु तथा प्रस्तुति शैली के अनुसार किया जाता है।[41]

कजरी गायन में सर्वाधिक प्रचलित **दादरा ताल** है। दादरा की छह मात्राएँ गीत में कोमलता, मधुरता तथा चंचलता उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण यह कजरी के लिए अत्यन्त उपयुक्त मानी जाती है। इसके अतिरिक्त **कहरवा ताल** का भी व्यापक प्रयोग होता है। कहरवा की आठ मात्राएँ लोकगीतों की सहज लय को बनाए रखने में सहायक होती हैं। इन दोनों तालों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट कजरियों में **रूपक ताल** तथा **झपताल** का भी प्रयोग देखने को मिलता है। इन तालों के माध्यम से कलाकार अपनी प्रस्तुति को अधिक प्रभावशाली एवं कलात्मक बनाते हैं।

कजरी की कुछ पारम्परिक शैलियों में एक विशेष प्रकार की ताल का भी प्रयोग होता है जिसे **'भड़तिल्ला' अथवा 'भरताला'** कहा जाता है। इस ताल का प्रयोग विशेष रूप से उन गीतों में किया जाता है जिनमें उत्साह, समूह गायन तथा लोकनृत्य का समावेश होता है। इस ताल की विशेषता इसकी उछालपूर्ण गति तथा लयात्मक ऊर्जा है, जो प्रस्तुति को अत्यन्त आकर्षक बना देती है।

वाद्य-संगत की दृष्टि से भी कजरी अत्यन्त समृद्ध है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में गायी जाने वाली सरल लोक कजरी बिना किसी वाद्य के भी प्रस्तुत की जाती रही है, तथापि मंचीय प्रस्तुति में अनेक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। प्रमुख रूप से **करताल, ढोल, मंजीरा, डॉड़िया, तबला, नाल, झाँझ, हारमोनियम, तानपूरा, सारंगी, क्लरियोनेट तथा बुलबुल तरंग** का प्रयोग किया जाता है। इन वाद्यों की संगति कजरी की भावाभिव्यक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाती है तथा प्रस्तुति में सौन्दर्य और माधुर्य का समावेश करती है।

स्पष्ट है कि कजरी का सांगीतिक स्वरूप अत्यन्त संतुलित है, जिसमें लोकसरलता तथा शास्त्रीय अनुशासन का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

प्रमुख कलाकारों का योगदान

पद्मश्री गिरिजा देवी

कजरी को लोकपरम्परा से शास्त्रीय मंच तक प्रतिष्ठित करने वाले कलाकारों में **पद्मश्री गिरिजा देवी** का नाम अत्यन्त सम्मान के साथ लिया जाता है। आपका जन्म **8 मई 1929** को हुआ। आपके पिता **श्री रामदास जी** संगीत के अत्यन्त रसिक एवं कला-प्रेमी थे। बाल्यावस्था से ही आपको संगीत का वातावरण प्राप्त हुआ तथा चार-पाँच वर्ष की आयु में ही संगीत शिक्षा प्रारम्भ हो गई।

आपने प्रारम्भिक संगीत शिक्षा **पं. सरजू प्रसाद मिश्र** से प्राप्त की। उनके मार्गदर्शन में आपने ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा तथा कजरी जैसी विभिन्न गायन विधाओं का गंभीर अध्ययन किया। बाद में **श्रीचन्द्र मिश्र** से शिक्षा प्राप्त कर आपने अपनी गायकी को और अधिक परिपक्व बनाया।

गिरिजा देवी ने कजरी को केवल मंचीय प्रतिष्ठा ही नहीं दिलाई, बल्कि इसे राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान भी प्रदान की। आपकी गायकी में बनारस अंग की विशिष्टता, भावप्रधानता तथा लोक एवं शास्त्रीय संगीत का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। आपको **पद्मश्री**, **पद्मभूषण**, **संगीत नाटक अकादमी सम्मान**, **तानसेन पुरस्कार**, **डी.लिट.** सहित अनेक राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए। आपके योगदान के कारण कजरी को उपशास्त्रीय संगीत की प्रतिष्ठित विधा के रूप में व्यापक स्वीकृति मिली।

श्रीमती मंजू सुन्दरम

कजरी के प्रचार-प्रसार में **श्रीमती मंजू सुन्दरम** का योगदान भी अत्यन्त उल्लेखनीय है। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपने अपने पिता **श्री महादेव केशव सामन्त** से प्राप्त की। इसके अतिरिक्त आपको **श्री के.जी. गिन्डे**, **रातंजनकर जी** तथा

विशेष रूप से **पद्मविभूषण गिरिजा देवी** के सान्निध्य में लगभग पन्द्रह से बीस वर्षों तक बनारस अंग की ठुमरी, कजरी, चैती, होली तथा टप्पा की विशिष्ट शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला।[42]

आपकी प्रस्तुति में शास्त्रीय अनुशासन एवं लोकसंवेदना का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। इसी कारण आपकी गायकी को देश के विभिन्न संगीत मंचों पर अत्यधिक सराहना मिली। आपको **सुरश्रृंगार**, **सुरमणि**, **उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी** आदि प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत किया गया। विभिन्न संगीत संस्थाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं ने भी आपके योगदान की प्रशंसा की।

पंडित छन्नूलाल मिश्र

बनारस घराने के सुप्रसिद्ध गायक **पंडित छन्नूलाल मिश्र** ने कजरी सहित अनेक उपशास्त्रीय गायन विधाओं को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपका जन्म **30 अगस्त 1936** को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के हरिहरपुर ग्राम में हुआ। संगीत का वातावरण आपको पारिवारिक विरासत के रूप में प्राप्त हुआ तथा प्रारम्भिक शिक्षा आपने अपने पिता **पं. बद्री प्रसाद मिश्र** से ग्रहण की।

बाद में आपने **अब्दुल गनी खाँ** एवं **ठाकुर जयदेव सिंह** जैसे विद्वानों से संगीत का गहन अध्ययन किया। आपने ख्याल, ठुमरी, चैती, होली, दादरा तथा कजरी की प्रस्तुति में विशिष्ट पहचान बनाई। देश-विदेश के अनेक प्रतिष्ठित संगीत समारोहों में अपनी कला का प्रदर्शन कर आपने भारतीय संगीत की गरिमा को बढ़ाया।

आपको **आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के उच्च श्रेणी के कलाकार**, **सुरमणि**, **सुर सिंगार** आदि सम्मानों से विभूषित किया गया। कजरी की मंचीय प्रतिष्ठा में आपका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

पंडित पशुपति नाथ मिश्र

कजरी के विकास में **पंडित पशुपति नाथ मिश्र** का योगदान भी उल्लेखनीय है। आपका जन्म लगभग **1940-41** के आसपास काशी में हुआ। प्रारम्भिक संगीत शिक्षा आपने अपने पिता **महादेव प्रसाद मिश्र** से प्राप्त की। अपने बड़े भाई **श्री अमरनाथ मिश्र** के साथ आपकी जुगलबन्दी अत्यन्त प्रसिद्ध रही तथा आप दोनों **'मिश्र बन्धु'** के नाम से भी विख्यात हुए।

आपकी गायकी की विशेषता ठुमरी, दादरा, टप्पा तथा कजरी रही। आपने देश के अनेक प्रमुख संगीत समारोहों में भाग लेकर कजरी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपकी प्रस्तुति में लोकभावना तथा शास्त्रीय सौन्दर्य का संतुलित समन्वय देखने को मिलता है।

अन्य कलाकारों का योगदान

कजरी के विकास एवं संरक्षण में अनेक अन्य कलाकारों एवं विद्वानों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें **सिद्धेश्वरी देवी**, **शोभा गुर्टू**, **उर्मिला श्रीवास्तव**, **बब्बा बाई**, **राधे रानी**, **बेगम अख्तर**, **पं. महादेव प्रसाद मिश्र** तथा **मुन्नीबाई** आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कलाकारों ने अपने विशिष्ट गायन के माध्यम से कजरी को लोकजीवन से निकालकर राष्ट्रीय संगीत मंचों तक पहुँचाया तथा इसकी सांगीतिक गरिमा को समृद्ध किया।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कजरी भारतीय लोकसंगीत की अत्यन्त समृद्ध एवं जीवंत परम्परा है। इसमें लोकजीवन की सहज अनुभूतियाँ, प्रकृति का सौन्दर्य, वर्षा ऋतु की सजीवता, पारिवारिक सम्बन्धों की आत्मीयता तथा विरह एवं प्रेम जैसे मानवीय भाव अत्यन्त स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होते हैं। समय के साथ कजरी ने लोकपरम्परा से शास्त्रीय मंच तक की उल्लेखनीय यात्रा सम्पन्न की और अनेक महान कलाकारों ने इसे उपशास्त्रीय संगीत की प्रतिष्ठित विधा के रूप में स्थापित किया।

वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि कजरी की इस समृद्ध परम्परा का संरक्षण, प्रलेखन तथा शैक्षणिक अध्ययन निरन्तर किया जाए, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ भारतीय लोकसंगीत की इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर से परिचित हो सकें।

सन्दर्भ :

1. कजरी, मिर्जापुर सरनाम, डॉ. अर्जुनदास केमरी, पृ.-5
2. मध्योत्तर भारत के लोक नाट्य एवं नृत्य, डॉ. अर्जुन दास केसरी एवं श्री मोहन लाल बाबुलकर, पृ.स.-4
3. कजरी, शान्ति जैन, पृ. 1
4. निबन्ध संगीत, लक्ष्मीनारायण गर्ग, पृ. 97
5. कजरी मिर्जापुर सरनाम, डॉ अर्जुनदास केसरी, पृ. सं. 5
6. मध्योत्तर भारत के लोक नाट्य एवं नृत्य, डॉ. अर्जुन दास केसरी, श्री मोहन लाल बाबुलकर, पृ. 4

7. कजरी मिर्जापुर सरनाम, डॉ. अर्जुनदास केसरी, पृ. 5
8. कजरी, शान्ति जैन, पृ.-7-8
9. कजरी, शान्ति जैन, पृ. 9
10. वही पुस्तक पृ. 76
11. कजरी, शान्ति जैन, पू. 76
12. वही पुस्तक, पृ.77
13. वही पुस्तक, पृ.10
14. कजरी मिर्जापुर सरनाम, डॉ अर्जुनदास, डॉ अर्जुनदास केसरी पू.-16
15. निबन्ध संगीत, लक्ष्मी नारायण गर्ग, पृ. 97
16. वही पुस्तक, पृ. 98
17. भोजपुरी लोकगीत, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय पृ. 295
18. कजरी, मिर्जापुर सरनाम, डॉ. अर्जुनदास केसरी, पृ. 18
19. कजरी मिर्जापुर सरनाम, डॉक्टर अर्जुनदास केसरी पृष्ठ सं. 12
20. कजरी शान्ति जैन, पू.सं. 37
21. कजरी शान्ति जैन, पू. सं. 31
22. कजरी: लोक एवे उपशास्त्रीय संगीतात्मक विद्या, कु. ऋचा तिवारी, पृ. 16
23. वही पुस्तक पृ.-16
24. वही पुस्तक पृ.- 17
25. प्रान्तीय संगीत विविध पक्ष, सम्पा. डॉ. सुधा सहगल, पृ. 14
26. कजरी शान्ति जैन पृ. 29
27. प्रान्तीय संगीत विविध पक्ष, सम्पा.... डॉ. सुधा सहगल, पृ. 15
28. कजरी शान्ति जैन पृ. सं. 38
29. लोक काव्य विधा कजरी, डॉ अब्दुल विस्मिल्ला, पृ. 20,21
30. वही पुस्तक पृ. 1
31. वही पुस्तक पृ. 14
32. प्रान्तीय संगीत, डॉ सुधा सहगल, पृ. 39
33. वही पुस्तक पृ.- 20
34. लोककाव्य विधा कजरी, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्ला, पृ. 16-17
35. कजरी, शान्ति जैन, पृ. 15
36. वही पुस्तक, पृ. 14
37. कजरी, शान्ति जैन, पृ. 18
38. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत, डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, पृ. 125
39. प्रान्तीय संगीतः विविध पक्ष, डॉ. सुधा सहगल, पृ.23
40. प्रान्तीय संगीत : विविध पक्ष, डॉ सुधा सहगल, पृ. 23
41. कजरी, शान्ति जैन, पृ. 86
42. प्रांत्तिय संगीत, विविधपक्ष, पृ. 33